HIN3B18b **जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७)**

१ - < कानन कुसुम **गान**

जननी जिसकी जन्मभूमि हो, वसुन्धरा ही काशी हो
विश्व स्वदेश, भ्रातु मानव हों, पिता परम अविनाशी हो
दम्भ न छूए चरण-रेणु वह धर्म नित्य-यौवनशाली
सदा सशक्त करों से जिसकी करता रहता रखवाली
शीतल मस्तक, गर्म रक्त, नीचा सिर हो, ऊँचा कर भी
हँसती हो कमला जिसके करुणा-कटाक्ष में, तिस पर भी
खुले-किवाड़-सदृश हो छाती सबसे ही मिल जाने को
मानस शांत, सरोज-हृदय हो सुरभि सहित खिल जाने को
जो अछूत का जगन्नाथ हो, कृषक-करों का दृढ़ हल हो
दुखिया की आँखों का आँसू और मजूरों का कल हो
प्रेम भरा हो जीवन में, हो जीवन जिसकी कृतियों में
अचल सत्य संकल्प रहे, न रहे सोता जागृतियों में
ऐसे युवक चिरञ्जीवी हों, देश वना सुख-राशी हो
और इसलिए आगे वे ही महापुरुष अविनाशी हो

२ - < झरना **अतिथि**

हृदय गुफा थी शून्य,
रहा घर सूना ।
इसे बसाऊँ शीघ्र,
बढ़ा मन दूना ॥

अतिथि आ गया एक ,
नहीं पहचाना ।
हुए नहीं पद शब्द,
न मैंने जाना ॥

हुआ बड़ा आनन्द,
बसा घर मेरा ।
मन को मिला विनोद,
कर लिया घेरा ॥

उसको कहे "प्रेम",
अरे अब जाना ।
लगे कठिन नख रेख,
तभी पहचाना ॥

अतिथि रहा वह किन्तु
ना घर बाहर था ।
लगा खेलने खेल,
अरे, नाहर था ॥

३ - < लहर **लहर (७)**

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही -
तारा-घट-ऊषा नागरी ।
खग-कुल कुल कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा,
लो यह लटिका भी भर लाई -
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये -
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री !

४ - < कामायनी **१ - चिंतन**

हिमगिरि के उत्तंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय-प्रवाह

नीचे जल था, ऊपर हिम था एक तरल था, एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन ।

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम स्तब्ध उसी के हृदय समान,
नीरवता सी शिला चरण से टकराता फिरता पवमान ।

तरुण तपस्वी-सा वह बैठा साधन करता सुर-श्मशान,
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का होता था सकरुण अवसान । .../...

२ - आशा

उषा सुनहले तीर बरसती
उधर पराजित कालरात्रि भी

जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई,
जल में अंतनिहित हुई ।

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में

आज लगा हँसने फिर से,
शरद विकास नये सिर से ।

नव कोमल आलोक बिखरता
सित सरोज पर क्रीड़ा करता

हिम संसृति पर भर अनुराग,
जैसे मधुमय पिंग पराग ।

धीरे-धीरे हिम-आच्छादन
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई

हटने लगा धरातल से,
मुख धोती शीतल जल से ।

नेत्र निमीलन करती मानो
जलधि लहरियों की अँगड़ाई

प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने,
बार-बार जाती सोने ।

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में

तनिक संकुचित बैठी-सी,
मान किये-सी ऐंठी-सी ।

देखा मनु ने यह अतिरंजित
जैसे कोलाहल सोया हो

विजन विश्व का नव एकांत,
हिम, शीतल जड़ता-सा

इन्द्रनील मणि महा चषक था
आज पवन मृदु साँस ले रहा

सोम रहित उलट लटका,
जैसे बीत गया खटका ।

.../...